वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 441
ISBN 978-93-84003-47-0

द्वादशांग श्रुत लिपिबद्ध नहीं हो सकता

♦ *लेखन एवं संकलन* ♦

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

(बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के
प्रथम पट्टशिष्य आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज की शिष्या,
दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से विभूषित)

श्रावण कृष्णा एकम् (13 जुलाई 2014) को परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित ''श्री गौतम गणधर वर्ष'' (2014-2015) के अन्तर्गत शरदपूर्णिमा 2014 के अवसर पर प्रकाशित)

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र., फोन नं.- (01233) 280184, 280994

Website : www.jambudweep.org, www.encyclopediaofjainism.com

E-mail : jambudweeptirth@gmail.com Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2540	मूल्य
1100 प्रतियाँ	आश्विन शु. पूर्णिमा, 8 अक्टूबर 2014	12/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशक एवं सम्पादक :-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

——— सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन ———

-कम्पोजिंग-

ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

द्वादशांग जिनवाणी को ग्रंथरूप में नहीं लिखा जा सकता

(दिगम्बर जैन परम्परा में भगवान महावीर के बाद 683 वर्ष तक ही द्वादशांग श्रुत एवं उसके ज्ञाता आचार्य रहे हैं)

-गणिनी ज्ञानमती माताजी

जैन वाङ्मय द्वादशांगरूप है और दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार आज द्वादशांग उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि द्वादशांग लिखे ही नहीं जा सकते, लिपिबद्ध नहीं हो सकते। आज उपलब्ध जैन वाङ्मय उस द्वादशांग का अंशमात्र ही है, जैसे नदी का जल कटोरी अथवा शीशी में भर लिया जाये। जैन श्रुत अर्थात् द्वादशांग अनादि-अनंत है और चौबीसों तीर्थंकर भगवान अपने-अपने काल में दिव्यध्वनि के द्वारा उसे प्रगट करते हैं। भगवान की दिव्यध्वनि को गणधर देव द्वादशांगरूप में निबद्ध करके भव्यजीवों को उसका पान कराते हैं।

भगवान महावीर आज से 2612 वर्ष पूर्व जन्में और 2570 वर्ष पूर्व भगवान ने केवलज्ञान प्राप्त किया, 66 दिन तक भगवान की दिव्यध्वनि नहीं खिरी, तब सौधर्म इन्द्र ने वेद-वेदांगों के पारंगत श्रेष्ठ ब्राह्मण इन्द्रभूति गौतम को उनके पाँच सौ शिष्यों के साथ भगवान के समवसरण में उपस्थित किया। मानस्तंभ को देखते ही गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति ब्राह्मण का मान गलित हो गया, 'जयति भगवान् हेमाम्भोजप्रचार.....' इत्यादि रूप से उन्होंने भगवान की स्तुति की। केशलोंच करके जैनेश्वरी दीक्षा को धारण करते ही उन्हें सभी ऋद्धियाँ एवं मनःपर्ययज्ञान प्रगट हो गया तथा भगवान के प्रथम गणधर का पद उन्हें प्राप्त हो गया। वीर शासन जयंती, श्रावण कृ. एकम् के इस पावन दिवस भगवान की प्रथम दिव्यध्वनि खिरी एवं अन्तर्मुहूर्त में ही गौतम गणधर स्वामी ने इस दिव्यध्वनि को द्वादशांगरूप में निबद्ध कर दिया।

धवला पुस्तक 1, पृ. 65 पर उल्लिखित है-

तेण महावीरेण केवलणाणिणा कहिदत्थो तम्हि चेव काले तत्थेव खेत्ते खयोवसम-जणिद-चउरमल-बुद्धि-संपण्णेण बम्हणेण गोदम-गोत्तेण सयलदुस्सुदि-पारएण जीवाजीव-विसय-संदेह-विणासणट्ठमुवगय-वड्ढमाण-पाद-मूलेण इंदभूदिणावहारिदो।

इस प्रकार केवलज्ञान से विभूषित उन भगवान् महावीर के द्वारा कहे गये अर्थ को, उसी काल में और उसी क्षेत्र में क्षयोपशमविशेष से उत्पन्न हुए चार प्रकार के निर्मल ज्ञान से युक्त, वर्ण से ब्राह्मण, गोतमगोत्री, संपूर्ण दुःश्रुति में पारंगत और जीव-अजीवविषयक संदेह को दूर करने के लिए श्री वर्द्धमान के पादमूल में उपस्थित हुए ऐसे इन्द्रभूति ने अवधारण किया।

अर्थात् अर्थकर्ता भगवान महावीर हैं और ग्रंथकर्ता इन्द्रभूति गौतम गणधर स्वामी हैं। धवला पुस्तक 9 में भी पृ. 107 पर विस्तार से इस विषय का एवं गौतम स्वामी की ऋद्धियों का वर्णन है।

भगवान महावीर के पश्चात् द्वादशांग श्रुत की परम्परा–

भगवान महावीर के मोक्ष जाने के बाद 62 वर्ष तक अनुबद्ध केवली हुए हैं और 100 वर्ष तक श्रुतकेवली हुए हैं अर्थात् 162 वर्ष तक ही द्वादशांग श्रुतज्ञान रहा है, इसके बाद द्वादशांग श्रुतज्ञान नहीं रहा।

धवला पुस्तक 9, पृ. 130 एवं जयधवला (कषायपाहुड़) पुस्तक-1, पृ. 687 के आधार पर यह स्पष्ट है कि-

जिस दिन भगवान महावीर मोक्ष गये, उसी दिन सायंकाल गौतम स्वामी को केवलज्ञान हो गया। केवली भगवान गौतम स्वामी 12 वर्ष तक रहे, जिस दिन उन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई, उसी दिन भगवान महावीर के द्वितीय गणधर श्री सुधर्माचार्य को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गयी, वह भी 12 वर्ष तक केवली अवस्था में रहे, पुनः उनके मोक्षगमन के दिन ही जम्बूस्वामी ने केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया। ये जम्बूस्वामी 38 वर्ष तक केवली रहे हैं,

इस प्रकार भगवान महावीर के पश्चात् 12+12+38=62 वर्ष तक अनुबद्ध केवली रहे हैं।

पुनः नंदी आचार्य, नंदिमित्र आचार्य, अपराजित आचार्य, गोवर्धन आचार्य और भद्रबाहु आचार्य, ये पाँच श्रुतकेवली 100 वर्ष की अवधि में क्रम से हुए हैं।

इसके पश्चात् 11 अंग और 14 पूर्व रूप द्वादशांग श्रुत नहीं रहा। जो रहा, वो इस प्रकार है-

ग्यारह आचार्य 11 अंग और 10 पूर्व के ज्ञाता हुए, जिनका काल रहा 183 वर्ष। ये ग्यारह आचार्य थे- विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव एवं सुधर्माचार्य। अनंतर 5 आचार्य 11 अंग के धारी हुए, पूर्व का ज्ञान इनको नहीं रहा, इनका काल 220 वर्ष था। ये पाँच आचार्य थे- नक्षत्राचार्य, जयपाल आचार्य, पांडु आचार्य, ध्रुवसेन आचार्य और कंस आचार्य। पुनः सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु, लोहाचार्य ये चार आचार्य मात्र एक अंग-आचारांग के ज्ञाता हुए अर्थात् शेष 10 अंग एवं 14 पूर्वों का ज्ञान लुप्त हो गया। इनका काल रहा 118 वर्ष।

इस प्रकार गौतम स्वामी से लेकर आचारांग धारी आचार्यों तक का काल 62+100+183+220+118=683 वर्ष प्रमाण हैं।

इसके पश्चात् श्री धरसेनाचार्य को अग्रायणीय पूर्व अर्थात् द्वितीय पूर्व के कुछ अंश का ज्ञान था, जिसे उन्होंने श्री पुष्पदंत-भूतबलि आचार्य को दिया, जिन्होंने श्री धरसेनाचार्य से प्राप्त ज्ञान के आधार पर षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना की अर्थात् अंशज्ञान से षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना हुई, जिसकी धवला टीका 16 पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हुई है।

कषायप्राभृत ग्रंथ के कर्ता श्री गुणधर आचार्य को पाँचवें पूर्व के कुछ अंश का ज्ञान था, जिससे उन्होंने कषायप्राभृत ग्रंथ रचा, जिसकी टीका जयधवला की 16 पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुकी है।

द्वादशांग श्रुत अर्थात् 11 अंग एवं 14 पूर्वों का ज्ञान दिगम्बर मुनिराज को ही हो सकता है। आर्यिकाएँ 11 अंग तक का ही ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं, जबकि ऐलक, क्षुल्लक एवं श्रावक वर्ग को द्वादशांग (एवं प्रायश्चित्त ग्रंथों) की ज्ञान-प्राप्ति का अधिकार नहीं है। देखें आचार्य वसुनन्दि कृत वसुनन्दि श्रावकाचार में पृष्ठ 112 पर-

दिणपडिम-वीरचरिया-तियालजोगेसु णत्थि अहियारो।
सिद्धंत-रहस्साण वि अज्झयणं देसविरदाणं।।312।।

दिन में प्रतिमायोग धारण करना अर्थात् नग्न होकर दिन भर कायोत्सर्ग करना, वीरचर्या अर्थात् मुनि के समान गोचरी करना, त्रिकाल योग अर्थात् गर्मी में पर्वत के शिखर पर, बरसात में वृक्ष के नीचे और सर्दी में नदी के किनारे ध्यान करना, सिद्धान्त-ग्रंथों का अर्थात् केवली, श्रुतकेवली-कथित गणधर, प्रत्येक बुद्ध और अभिन्नदशपूर्वी साधुओं से निर्मित ग्रंथों का अध्ययन और रहस्य अर्थात् प्रायश्चित्त शास्त्र का अध्ययन, इतने कार्यों में देशविरती श्रावकों का अधिकार नहीं है।।312।।

[1]यद्यपि आर्यिकाएँ पंचमगुणस्थान वाली हैं, फिर भी ये ग्यारहवीं प्रतिमाधारी क्षुल्लक, ऐलक की अपेक्षा उत्कृष्ट हैं, क्योंकि ये उपचार से महाव्रती संयतिका कहलाती हैं। मुनि के समान सर्व मूलगुणों को और समाचार क्रियाओं को पालन करती हैं। ग्यारह अंग तक श्रुत का अध्ययन करने का भी इनको अधिकार है।

पुराण ग्रंथ में भी सुना जाता है। उसे ही कहते हैं-

''एकादशांगभृज्जाता सार्यिकापि सुलोचना[2]।।''

''वह सुलोचना आर्यिका भी ग्यारह अंग के ज्ञान को धारण करने वाली हो गई।''

---

1. नियमसार प्राभृत (हिन्दी टीकाकर्त्री-गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी), पृ. 430-431, 2. हरिवंशपुराण, सर्ग-12, श्लोक 52

द्वादशांग रचना गणधर ही करते हैं–

अब एक विशेष बात यह है कि कभी कोई विद्वान् अथवा साधुजन वर्तमान में यह प्रयास करें कि आचारांग आदि द्वादशांगों को ग्रंथ रूप में लिख लिया जाये, तो यह प्रयास कदापि भी नहीं किया जाना चाहिए। क्योंकि-

(1) दिगम्बर जैन परम्परा के अनुसार द्वादशांग श्रुत को निबद्ध करने का अधिकार मात्र गणधर देव को ही है, अन्य किन्हीं को नहीं है, श्रुतकेवली यद्यपि इस सम्पूर्ण द्वादशांग के ज्ञाता होते हैं तथापि वो भी इसे रचते नहीं है, गुरुमुख से पढ़कर ही इसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। महान क्षयोपशम के धारी सभी श्रुतकेवली एकपाठी थे, मात्र सुनकर ही उन्होंने इस महान श्रुत को धारण कर लिया था।

श्रुतभक्ति में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है–

श्रुतमपि जिनवरविहितं, गणधररचितं द्वयनेकभेदस्थम्।
अंगांगबाह्यभावितमनंतविषयं नमस्यामि।।

अर्थात्,

जिनवर कथित रचित गणधर से, युत अंगांग बाह्य संयुत।
द्वादश भेद अनेक अनंत, विषययुत वंदूँ मैं जिनश्रुत।।

स्पष्ट है कि जिनवर द्वारा कथित बारह अंग एवं अंगबाह्य से संयुक्त जिनश्रुत गणधर स्वामी द्वारा रचित होता है।

लघु श्रुतभक्ति की निम्न पंक्तियाँ भी दृष्टव्य हैं-

अर्हद्वक्त्रप्रसूतं, गणधररचितं द्वादशांगं विशालं।
चित्रं बह्वर्थयुक्तं, मुनिगण वृषभैर्धारितं बुद्धिमद्भिः।।
मोक्षाग्रद्वारभूतं, व्रतचरणफलं श्रेयभावप्रदीपं।
भक्त्या नित्यं प्रवन्दे, श्रुतमहमखिलं सर्वलोकैकसारम् ।।1।।
जिनेन्द्रवक्त्रप्रतिनिर्गतं वचो, यतीन्द्रभूतिप्रमुखैर्गणाधिपैः।
श्रुतं धृतं तैश्च पुनः प्रकाशितं, द्विषट्प्रकारं प्रणमाम्हं श्रुतं।।2।।
कोटीशतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पंचाशदष्टौ च सहस्रसंख्यमेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि।।3।।
अरहंतभासियत्थं, गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवहिं सिरसा।।4।।

अर्थात्

अर्हन् मुख से निकली गणधर, रचित सुबारह अंग महान्।
बुद्धिमंत मुनिपुंगव से, धारित बहुअर्थ सहित अमलान।।
मोक्ष अग्र का द्वार चरित, व्रत फलयुत ज्ञेयजगत् दीपक।
सर्वजगत् में सार सर्वश्रुत, को नित वंदूँ भक्तीयुत।।1।।
श्री जिनेंद्र के मुख पंकज से, प्रगट दिव्यध्वनि वचनस्वरूप।
इन्द्रभूति यतिपति गणधर ने,श्रुत को धारण किया अनूप।।
उन गणधर देवों ने द्वादश, अंग सहित द्रव्यश्रुत को।
किया प्रकाशित इस पृथ्वी पर, नमूँ नमूँ मैं सब श्रुत को।।2।।

इक सौ बारह कोटि तिरासी, लाख अठावन सहस रु पाँच।
द्वादशांग श्रुत के पद इतने, वंदन करूँ नमाकर माथ।।3।।
अर्हत् कथित अर्थमय सम्यक्, गूँथा है गणधर गुरु ने।
उस श्रुतज्ञान जलधि को शिर से, प्रणमूँ भक्ति समन्वित मैं।।4।।

इसी प्रकार प्रचलित जिनवाणी-पूजा में भी निम्न पंक्तियाँ देखें-

तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर वानी शिवसुख दानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई।।

(2) इस संदर्भ में एक मुख्य तथ्य यह है कि **द्वादशांग का एक मध्यम पद 1634 करोड़, 83 लाख 7888 अक्षर का होता है तथा द्वादशांग में कुल 112 करोड़ 83 लाख 58 हजार 5 पद होते हैं,** अतः द्वादशांग तो दूर एक पद की रचना करना ही कठिन है, तब द्वादशांग की रचना करने का विचार करना ही जिनवाणी के अवर्णवाद के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

(3) एक विचारणीय बिन्दु यह भी है कि यदि द्वादशांग श्रुत को लिखना संभव था तो श्रुतकेवली भद्रबाहु आचार्य ने द्वादशांग को क्यों नहीं रचा ? इसी प्रकार श्री धरसेनाचार्य जी के शिष्य श्री पुष्पदंत-भूतबलि आचार्यों ने द्वितीय पूर्व के किंचित् अंशमात्र से षट्खण्डागम ग्रंथ की रचना तो की, पुनः द्वादशांग को क्यों नहीं लिखा ?

कषायप्राभृत ग्रंथ के कर्ता श्री गुणधर आचार्य ने द्वादशांग की रचना क्यों नहीं की ?

कुंद-कुंद स्वामी जो साक्षात् विदेह क्षेत्र में विराजमान सीमंधर भगवान के समवसरण में जाकर आये, उन्होंने द्वादशांग की रचना का साहस नहीं किया, श्री उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र की रचना की परन्तु द्वादशांग की रचना नहीं की, इसका कारण यही है कि द्वादशांग को निबद्ध करना शक्य ही नहीं है, इसलिए वर्तमान में ऐसा प्रयास दिगम्बर परम्परा का श्वेताम्बरीकरण करने जैसा ही है क्योंकि श्वेताम्बर परम्परा में ही आचारांग इत्यादि अंग लिखे गये हैं।

अतः वास्तविकता को समझकर किन्हीं को भी द्वादशांग की रचना करने का विचार कभी भी नहीं करना चाहिए। द्वादशांग के अंश के रूप में जो भी साहित्य–कषायपाहुड़, षट्खण्डागम, महाबंध एवं उन पर आधारित गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड आदि ग्रंथों का स्वाध्याय-मनन-चिंतन करके अपने जीवन को सफल करना चाहिए तथा आगम-विरुद्ध किसी भी प्रक्रिया से स्वयं को सर्वथा विलग रखना चाहिए।

पदों के लक्षण

षट्खण्डागम (पुस्तक-1) से उद्धृत

पद के भेद एवं लक्षण–

तिविहिं पदं तु भणिदं, अत्थपद-पमाण-मज्झिमपदं ति।
मज्झिमपदेण भणिदा, पुव्वंगाणं पदविभागा।।

श्लोकार्थ–अर्थपद, प्रमाणपद और मध्यमपद ये पद के तीन भेद माने गए हैं। इनमें से मध्यम पद के द्वारा अंग एवं पूर्वों का पदविभाग किया गया है।

पद तीन प्रकार के होते हैं–अर्थपद, प्रमाणपद और मध्यमपद। इनमें से अनियत अक्षरों का समूह ''अर्थपद'' है। जैसे–ग्रंथ को लाओ, देवपूजा करो इत्यादि।

आठ अक्षरों के समूह को ''प्रमाणपद'' कहते हैं। यथा–अनुष्टुप् छंद के एक-एक चरण में आठ-आठ अक्षर होते हैं इत्यादि।

मध्यमपद के अक्षरों का प्रमाण सर्वकाल (हमेशा) निश्चित ही रहता है। कहा भी है–परमागम में अंग पूर्वों की पदसंख्या मध्यम पदों के द्वारा ही बतलाई गई है। उस एक मध्यमपद के अक्षरों का प्रमाण कहते हैं–

सोलससयचउतीसा, कोडी तियसीदिलक्खयं चेव।
सत्तसहस्साट्ठसया, अट्ठासीदी य पदवण्णा।।336।।

गाथार्थ–सोलह सौ चौंतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी अक्षरों का एक मध्यम पद होता है।।336।।

अर्थात् एक मध्यमपद में सोलह सौ चौंतीस करोड़ तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी अक्षर होते हैं। इस प्रकार से द्वादशांग के समस्त पदों की संख्या कहते हैं–

बारुत्तरसयकोडी, तेसीदी तहय होंति लक्खाणं।
अट्ठावण्णसहस्सा, पंचेव पदाणि अंगाणं।।350।।

गाथार्थ–द्वादशांग के सब मध्यम पदों का प्रमाण एक सौ बारह करोड़ तिरासी लाख अठावन हजार पाँच है।

अर्थात् 1128358005 पद द्वादशांग में होते हैं ऐसा अभिप्राय है।।350।।

अब अंगबाह्य के अक्षरों की संख्या कहते हैं–

अडकोडिएयलक्खा, अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च।
पण्णत्तरि वण्णाओ, पइण्णयाणं पमाणं तु।।351।।

गाथार्थ–प्रकीर्णक अर्थात् सामायिक आदि चौदह अंग बाह्यों के अक्षर आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पिचहत्तर प्रमाण होते हैं।।351।।

अर्थात् 80108175 अक्षर प्रकीर्णक–अंगबाह्य में होते हैं ऐसा अर्थ हुआ।

इतने अक्षरों से मध्यमपद नहीं होते हैं अतएव इतने अक्षरों के द्वारा अंग पूर्व की पदसंख्या नहीं बनती है, इसी कारण इन अक्षरों के द्वारा ग्रथित–गूँथे गये-वर्णित किए गए श्रुत की 'अंगबाह्य' संज्ञा मानी गई है।

इस अंगबाह्य के चौदह भेद हैं–

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक और निषिद्धिका ये चौदह भेद अंगबाह्य के हैं।

भगवान महावीर स्वामी के बाद

683 वर्ष तक ही द्वादशांग रहे हैं

कसायपाहुड़ (जयधवला टीका) पुस्तक-1 का प्रमाण

जिणउवदिट्ठत्तादो होदु दव्वागमो पमाणं, किन्तु अप्पमाणीभूदपुरिसपव्वोलीकमेण आगयत्तादो अप्पमाणं वट्टमाणकालदव्वागमो त्ति ण पच्चवट्ठादुं जुत्तं, राग-दोष-भयादीदआइरियपव्वोलीकमेण आगयस्स अप्पमाणत्तविरोहादो। तं जहां, तेण महावीर- भडारएण इदंभूदिस्स अज्जस्स अज्जखेत्तुप्पण्णस्स चउरमल-बुद्धिसंपण्णस्स दित्तुग्गतत्ततवस्स अणिमादिअट्ठविह-विउव्वणलद्धिसंपण्णस्स सव्वट्ठसिद्धिणि-वासिदेवेहिंतो अणंतगुणबलस्स मुहुत्तेणेक्केण दुवालसंगत्थगंथाणं सुमरण-परिवादिकरणक्खमस्स सयपाणिपत्तणिवदिदरव्वं पि अमियसरूवेण पल्लट्टावणसमत्थस्स पत्ताहारवसहि-अक्खीणरिद्धिस्स सव्वोहिणाणेण दिट्ठासेसपोग्गलदव्वस्स तपोबलेण उप्पायिदुक्कस्सविउलमदि-मणपज्जवणाणस्स सत्तभयादीदस्स खविदचदुकसायस्स जियपंचिंदियस्स भग्गतिदंडस्स छज्जीवदयावरस्स णिट्ठवियअट्ठमयस्स दसधम्मुज्जयस्स अट्ठमाउगणपरिवालियस्स भग्गबाबीसपरीसहपसरस्स सच्चालंकारस्स अत्थो कहिओ। तदो तेण गोअमगोत्तेण इंदभूदिणा अंतोमुहुत्तेणावहारिय-दुवालसंगत्थेण तेणेव कालेण कयदुवालसंगगंथरयणेण गुणेहि सगसमाणस्स सुहमा (म्मा) इरियस्स गंथो वक्खाणिदो। तदो केत्तिएण वि कालेण केवलणाणमुप्पाइय वारसवासाणि केवलविहारेण विहरिय इंदभूदिभडारओ णिव्वुइं संपत्तो 12। तद्दिवसे चेव सुहम्माइरियो जंबूसामियादीणमणेयाणमाइरियाणं वक्खाणिददुवालसंगो घाइचउक्कक्खएण केवली जादो। तदो सुहम्मभडारयो वि बारहवस्साणि 12 केवलविहारेण विहरिय णिव्वुइं पत्तो। तद्दिवसे चेव जंबूसामिभडारओ बिट्ठू (विष्णु) आइरियादीणमणेयाणं वक्खाणिददुवालसंगो केवली जादो। सो वि अट्ठत्तीसवासाणि 38 केवलविहारेण विहरिदूण णिव्वुइं गदो। एसो एत्थोसप्पिणीए अंतिमकेवली।

यदि कोई ऐसा माने कि जिनेन्द्रदेव के द्वारा उपदिष्ट होने से द्रव्यागम प्रमाण होओ किन्तु वह अप्रमाणीभूत पुरुष- परम्परा से आया हुआ है। अर्थात् भगवान के द्वारा उपदिष्ट आगम जिन आचार्यों के द्वारा हम तक लाया गया है, वे प्रमाण नहीं थे। अतएव वर्तमानकालीन द्रव्यागम अप्रमाण है, सो उसका ऐसा मानना भी ठीक नहीं है, क्योंकि द्रव्यागम राग, द्वेष और भय से रहित आचार्यपरम्परा से आया हुआ है इसलिए उसे अप्रमाण मानने में विरोध आता है। आगे इसी विषय का स्पष्टीकरण करते हैं–

जो आर्य क्षेत्र में उत्पन्न हुए हैं, मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय इन चार निर्मल ज्ञानों से सम्पन्न हैं, जिन्होंने दीप्त, उग्र और तप्त तप को तपा है, जो अणिमा आदि आठ प्रकार की वैक्रियिक लब्धियों से सम्पन्न हैं, जिनका सर्वार्थसिद्धि में निवास करने वाले, देवों से अनन्तगुणा बल है, जो एक मुहूर्त में बारह अंगों के अर्थ और द्वादशांगरूप ग्रंथों के स्मरण और पाठ करने में समर्थ हैं, जो अपने पाणिपात्र में दी गई खीर को अमृतरूप से परिवर्तित करने में या उसे अक्षय बनाने में समर्थ हैं, जिन्हें आहार और स्थान के विषय में अक्षीण ऋद्धि प्राप्त है, जिन्होंने सर्वावधिज्ञान से अशेष पुद्गलद्रव्य का साक्षात्कार कर लिया है, तप के बल से जिन्होंने उत्कृष्ट विपुलमति मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न कर लिया है, जो सात प्रकार के भय से रहित हैं, जिन्होंने चार कषायों का क्षय कर दिया है, जिन्होंने पाँच इन्द्रियों को जीत लिया हैं, जिन्होंने मन, वचन और कायरूप तीन दंडों को भग्न कर दिया है, जो छह कायिक जीवों की दया पालने में तत्पर हैं, जिन्होंने कुलमद आदि आठ मदों को नष्ट कर दिया है, जो क्षमादि दस धर्मों में निरन्तर उद्यत हैं, जो आठ प्रवचन मातृकगणों का अर्थात् पाँच समिति और तीन गुप्तियों का परिपालन करते हैं, जिन्होंने क्षुधा आदि बाईस परीषहों के प्रसार को जीत लिया है और

जिनका सत्य ही अलंकार है, ऐसे आर्य इन्द्रभूति के लिए उन महावीर भट्टारक ने अर्थ का उपदेश दिया। उसके अनन्तर उन गौतम गोत्र में उत्पन्न हुए इन्द्रभूति ने एक अन्तर्मुहूर्त में द्वादशाङ्ग के अर्थ का अवधारण करके उसी समय बारह अंगरूप ग्रंथों की रचना की और गुणों से अपने समान श्री सुधर्माचार्य को उसका व्याख्यान किया। तदनन्तर कुछ काल के पश्चात् इन्द्रभूति भट्टारक केवलज्ञान को उत्पन्न करके और बारह वर्ष तक केवलिविहाररूप से विहार करके मोक्ष को प्राप्त हुए। उसी दिन सुधर्माचार्य, जम्बूस्वामी आदि अनेक आचार्यों को द्वादशांग का व्याख्यान करके चार घातिया कर्मों का क्षय करके केवली हुए। तदनन्तर सुधर्म भट्टारक भी बारह वर्ष तक केवलिविहाररूप से विहार करके मोक्ष को प्राप्त हुए। उसी दिन जम्बूस्वामी भट्टारक विष्णु आचार्य आदि अनेक ऋषियों को द्वादशांग का व्याख्यान करके केवली हुए। वे जम्बूस्वामी भी अड़तीस वर्ष तक केवलि-विहार रूप से विहार करके मोक्ष को प्राप्त हुए। ये जम्बूस्वामी इस भरतक्षेत्र संबंधी अवसर्पिणी काल में पुरुषपरम्परा की अपेक्षा अंतिम केवली हुए हैं।

एदम्हि णिव्वुइं गदे विष्णुआइरियो सयलसिद्धंतिओ उवसमियचउकसायो णंदिमित्ताइरियस्स समप्पियदुवालसंगो देवलोअं गदो। पुणो एदेण कमेण अवराइयो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे पंच पुरिसोलीए सयलसिद्धंतिया जादा। एदेसिं पंचण्हं पि सुदकेवलीणं कालो वस्ससदं 100। तदो भद्दबाहुभयवंते सग्गं गदे सयलसुदणाणस्स वोच्छेदो जादो।

इन जम्बूस्वामी के मोक्ष चले जाने पर सकल सिद्धान्त के ज्ञाता और जिन्होंने चारों कषायों को उपशमित कर दिया था ऐसे विष्णु आचार्य, नन्दिमित्र आचार्य को द्वादशांग समर्पित करके अर्थात् उनके लिए द्वादशाङ्ग का व्याख्यान करके देवलोक को प्राप्त हुए। पुनः इसी क्रम से पूर्वोक्त दो और अपराजित गोवर्द्धन तथा भद्रबाहु इस प्रकार ये पाँच आचार्य पुरुष परम्पराक्रम से सकल सिद्धान्त के ज्ञाता हुए। इन पाँचों ही श्रुतकेवलियों का काल सौ वर्ष होता है। तदनन्तर भद्रबाहु भगवान् के स्वर्ग चले जाने पर सकल श्रुतज्ञान का विच्छेद हो गया।

णवरि, विसाहाइरियो तक्काले आयारादीणमेक्कारसण्ह-मंगाणमुप्पायपुव्वाईणं दसण्हं पुव्वाणं च पच्चक्खाण-पाणावाय-किरियाविसाल-लोगबिंदुसारपुव्वाणमेगदेसाणं च धारओ जादो। पुणो अतुट्ठसंताणेण पोट्ठिल्लो खत्तिओ जयसेणो णागसेणो सिद्धत्थो धिदिसेणो विजयो बुद्धिल्लो गंगदेवो धम्मसेणो त्ति एदे एक्कारस जणा दसपुव्वहरा जादा। तेसिं कालो तेसिदिसदवस्साणि 183। धम्मसेणे भयवंते सग्गं गदे भारहवस्से दसण्हं पुव्वाणं वोच्छेदो जादो। णवरि, णक्खत्ताइरियो जसपालो पांडू ध्रुवसेणो कंसाइरियो चेदि एदे पंच जणा जहाकमेण एक्कारसंगधारिणो चोद्दसण्हं पुव्वाणमेगदेसधारिणो च जादा। एदेसिं कालो बीसुत्तरविसदवास-मेत्तो 220। पुणो एक्कारसंगधारए कंसाइरिए सग्गं गदे एत्थ भरहखेत्ते णत्थि कोइ वि एक्कारसंगधारओ।

किन्तु इतना विशेष है कि उसी समय विशाखाचार्य आचार आदि ग्यारह अंगों के और उत्पादपूर्व आदि दशपूर्वों के तथा प्रत्याख्यान, प्राणावाय, क्रियाविशाल और लोकबिन्दुसार इन चार पूर्वों के एकदेश के धारक हुए। पुनः अविच्छिन्न संतानरूप से प्रोष्ठिल्ल, क्षत्रिय, जयसेन, नागसेन, सिद्धार्थ, धृतिसेन, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन ये ग्यारह मुनिजन दस पूर्वों के धारी हुए। उनका काल एक सौ तिरासी वर्ष होता है। धर्मसेन भगवान् के स्वर्ग चले जाने पर भारत वर्ष में दस पूर्वों का विच्छेद हो गया। इतनी विशेषता है कि नक्षत्राचार्य, जसपाल, पांडु, ध्रुवसेन, कंसाचार्य ये पाँच मुनिजन ग्यारह अंगों के धारी और चौदह पूर्वों के एकदेश के धारी हुए। इनका काल दो सौ बीस वर्ष होता है। पुनः ग्यारह अंगों के धारी कंसाचार्य के स्वर्ग चले जाने पर यहाँ भरतक्षेत्र में कोई भी आचार्य ग्यारह अंगों का धारी नहीं रहा।

णवरि, तक्काले पुरिसोलीकमेण सुहदो जसभद्दो जहबाहू लोहज्जो चेदि एदे चत्तारि वि आयारंगधरा सेसंगपुव्वाणमेगदेसधरा य जादा। एदेसिमायारंगधारीणं कालो अट्ठारसुत्तरं वाससदं 118। पुणो लोहाइरिए सग्गं

गदे आयारंगस्स वोच्छेदो जादो। एदेसिं सव्वेसिं कालाणं समासो छसदवासाणि तेसीदिवासेहि समहियाणि 683। वड्ढमाणजिणिंदे णिव्वाणं गदे पुणो एत्तिएसु वासेसु अइक्कंतेसु एदम्हि भरहखेत्ते सव्वे आइरिया सव्वेसिमंगपुव्वाणमेगदेसधारया जादा।

इतनी विशेषता है कि उसी काल में पुरुषपरम्पराक्रम से सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चार आचार्य आचारांग के धारी और शेष अंग और पूर्वों के एकदेश के धारी हुए। आचारांग के धारण करने वाले इन आचार्यों का काल एक सौ अठारह वर्ष होता है। पुनः लोहाचार्य के स्वर्ग चले जाने पर आचारांग का विच्छेद हो गया। इन समस्त कालों का जोड़ 62+100+183+220+118=683 तेरासी अधिक छह सौ वर्ष होता है।

विशेषार्थ– तीन केवलियों के नामों में से धवला में सुधर्माचार्य के स्थान में लोहार्य नाम आया है। लोहार्य सुधर्माचार्य का ही दूसरा नाम है। जैसा कि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति की 'तेण वि लोहज्जस्स य लोहज्जेण य सुधम्मणामेण' इस गाथांश से प्रकट होता है तथा दस पूर्वधारियों के नामों में जयसेन के स्थान में जयाचार्य, नागसेन के स्थान में नागाचार्य और सिद्धार्थ के स्थान में सिद्धार्थदेव नाम धवला में आया है। इन नामों में विशेष अन्तर नहीं है। मालूम होता है कि प्रारंभ के दो नाम जयधवला में पूरे लिखे गये हैं और अंतिम नाम धवला में पूरा लिखा गया है तथा ग्यारह अंग के नामधारियों में जसपाल के स्थान में धवला में जयपाल नाम आया है। बहुत संभव है कि लिपिदोष से ऐसा हो गया हो या ये दोनों ही नाम एक आचार्य के रहे हों। इसी प्रकार आचारांगधारी आचार्यों के नामों में जहबाहू के स्थान में धवला में जसबाहू नाम पाया जाता है। इन्द्रनन्दिकृत श्रुतावतार में इसी स्थान में जयबाहू यह नाम पाया जाता है इसलिए यह कहना बहुत कठिन है कि ठीक नाम कौन सा है। लिपिदोष से भी इस प्रकार की गड़बड़ी हो जाना बहुत कुछ संभव है। जो भी हो। यहाँ एक ही आचार्य की दोनों कृति होने से पाठ भेद का दिखाना मुख्य प्रयोजन है।

वर्द्धमान जिनेन्द्र के निर्वाण चले जाने के पश्चात् इतने अर्थात् 683 वर्षों के व्यतीत हो जाने पर इस भरतक्षेत्र में सब आचार्य सभी अंगों और पूर्वों के एकदेश के धारी हुए।

तदो अंगपुव्वाणमेगदेसो चेव आइरियपरंपराए आगंतूण गुणहराइरियं संपत्तो। पुणो तेण गुणहरभडारएण णाणपवादपंचम-पुव्व-दसमवत्थु-तदियकसायपाहुडमहण्णवपारएण गंथवोच्छेदभएण पवयणवच्छलपरवसीक-यहियएण एदं पेज्जदोसपाहुडं सोलसपद-सहस्सपमाणं होंतं असीदि-सदमेत्तगाहाहि उवसंघारिदं। पुणो ताओ चेव सुत्त गाहाओ आइरियपरपंराए आगच्छमाणीओ अज्जमंखु-णागहत्थीणं पत्ताओ। पुणो तेसिं दोण्हं पि पादमूले असीदिसदगाहाणं गुणहरमुहकमलविणिग्गयाणमत्थं सम्मं सोऊण जयिवसहभडारएण पवयणवच्छलेण चुण्णिसुत्तं कयं।

उसके पश्चात् अंग और पूर्वों का एकदेश ही आचार्यपरम्परा से आकर गुणधर आचार्य को प्राप्त हुआ। पुनः ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्व की दसवीं वस्तुसंबंधी तीसरे कषायप्राभृतरूपी महासमुद्र के पार को प्राप्त श्री गुणधर भट्टारक ने, जिनका हृदय प्रवचन के वात्सल्य से भरा हुआ था सोलह हजार पदप्रमाण इस पेज्जदोसपाहुड़ का ग्रंथ विच्छेद के भय से, केवल एक सौ अस्सी गाथाओं के द्वारा उपसंहार किया।

विशेषार्थ-ऊपर जो पेज्जपाहुड सोलह हजार पदप्रमाण बतलाया है वह ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्व की दसवीं वस्तु के मूल पेज्जपाहुड का प्रमाण समझना चाहिए। यहाँ पद से मध्यमपद लेना चाहिए, क्योंकि द्वादशांग की गणना मध्यमपदों के द्वारा ही की गई है।

पुनः वे ही सूत्र गाथाएँ आचार्य परम्परा से आती हुईं आर्यमंक्षु और नागहस्ती आचार्य को प्राप्त हुईं। पुनः उन दोनों ही आचार्यों के पादमूल में गुणधर आचार्य के मुखकमल से निकली हुईं उन एक सौ अस्सी गाथाओं के अर्थ को भली प्रकार श्रवण करके प्रवचनवत्सल यतिवृषभ भट्टारक ने उन पर चूर्णिसूत्रों की रचना की।

जेणेदे सव्वे वि आइरिया जियचउकसाया भग्गपंचिंदियपसरा वू (चू) रियचउसण्णसेण्णा इड्ढि-रस-सादगारवुम्मुक्का सरीरवदिरित्तासेसपरिग्गहकलंकुत्तिण्णा एक्कसंथाए चेव सयलगंथत्थावहारया अलीयकारणाभावेण अमोहवयणा तेण कारणेणेदे पमाणं। ''वक्तृप्रामाण्याद् वचनस्य प्रामाण्यम्।।32।। इति न्यायात् एदेसिमाइरियाणं वक्खाणमुवसंहारो च पमाणमिदि घेत्तव्वं, प्रमाणीभूतपुरुषपंक्तिक्रमायातवचनकलापस्य नाप्रामाण्यम् अतिप्रसंगात्।

इस प्रकार जिसलिए ये सर्व ही आचार्य चारों कषायों को जीत चुके हैं, पाँचों इन्द्रियों के प्रसार को नष्ट कर चुके हैं, चारों संज्ञारूपी सेना को चूरित कर चुके हैं, ऋद्धिगारव, रसगारव और सादगारव से रहित हैं, शरीर से अतिरिक्त बाकी के समस्त परिग्रहरूपी कलंक से मुक्त हैं, एक आसन से ही सकल ग्रंथों के अर्थ को अवधारण करने में समर्थ हैं और असत्य के कारणों के नहीं रहने से मोहरहित वचन बोलते हैं इस कारण ये सब आचार्य प्रमाण हैं। ''वक्ता की प्रमाणता से वचन की प्रमाणता होती है।।32।।'' ऐसा न्याय होने से इन आचार्यों का व्याख्यान और उनके द्वारा उपसंहार किया गया ग्रंथ प्रमाण है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रामाणिक पुरुषपरम्पराक्रम से आया हुआ वचनसमुदाय अप्रमाण नहीं हो सकता है, अन्यथा अतिप्रसंग दोष आ जायेगा।

षट्खण्डागम—धवला पुस्तक-9 से प्रमाण

संपहि वड्ढमाणतित्थगंथकत्तारो वुच्चदे-

पंचेव अत्थिकाया छज्जीवणिकाया महव्वया पंच।
अट्ठ य पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य।।39।।

को होदि त्ति सोहम्मिंदचालणादो जादसंदेहेण पंच-पंचसयंतेवासिसहियभादुत्तिदयपरिवुदेण माणत्थंभदंसणेणेव पणट्ठमाणेण वड्ढमाणविसोहिणा वड्ढमाणजिणिंददंसण वणट्ठासंखेज्जभवज्जियगरुवकम्मेण जिणिंदस्स तिपदाहिणं करिय पंचमुट्ठीए वंदिए हियएण जिणं झाइय पडिवण्णसंजमेण विसोहिबलेण अंतोमुहुत्तस्स उप्पण्णासेसगणिंदलक्खणेण उवलद्धजिणवयणविणिविणिग्गयबीजपदेण गोदमगोत्तेण बम्हणेण इंदभूदिणा आयार-सूदयद-ट्ठाण-समवायवियाहपण्णत्ति-णाहधम्मकहोवासयज्झयणंतयडदस-अणुत्तरोववादियदस-पण्णवायरण-विवाय-सुत्त-दिट्ठिवादाणं सामाइय-चउवीसत्थय-वंदणा-पडिक्कमण-वइणइय-किदियम्म दसवेयालि-उत्तरज्झयण-कप्पववहार-कप्पाकप्प-महाकप्प-पुंडरीय-महापुंडरीय-णिसिहियाणं चोद्दसपइण्णयाणमंगबज्झाणं च सावणमासबहुलपक्खजुगादि-पडिवयपुव्वदिवसे जेण रयणा कदा तेणिंदभूदि भडारओ वड्ढमाणजिणतित्थगंथकत्तारो।
उत्तं च-

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्मि।।40।।

एवं उत्तरतंतकत्तारपरूवणा कदा।

अब वर्धमान जिनके तीर्थ में ग्रंथकर्ता को कहते हैं—

पाँच अस्तिकाय, छह जीवनिकाय, पाँच महाव्रत, आठ प्रवचनमाता अर्थात् पाँच समिति और तीन गुप्ति तथा सहेतुक बंध और मोक्ष।।39।।

'उक्त पाँच अस्तिकायादिक क्या है ? ऐसे सौधर्मेन्द्र के प्रश्न से संदेह को प्राप्त हुए, पाँच सौ-पाँच सौ शिष्यों से सहित तीन भ्राताओं से वेष्टित, मानस्तंभ के देखने से ही मान से रहित हुए, वृद्धि को प्राप्त होने वाली विशुद्धि से संयुक्त, वर्धमान भगवान के दर्शन करने पर असंख्यात भवों में अर्जित महान् कर्मों को नष्ट करने वाले, जिनेन्द्र देव की तीन प्रदक्षिणा करके पंच मुष्टियों से अर्थात् पाँच अंगों द्वारा भूमिस्पर्शपूर्वक वंदना करके

एवं हृदय से जिन भगवान का ध्यान कर संयम को प्राप्त हुए, विशुद्धि के बल से मुहुर्त के भीतर उत्पन्न हुए समस्त गणधर के लक्षणों से संयुक्त तथा जिनमुख से निकले हुए बीजपदों के ज्ञान से सहित ऐसे गौतम गोत्र वाले इन्द्रभूति ब्राह्मण द्वारा चूँकि आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्तिअंग, ज्ञातृधर्मकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्तकृतदशांग, अनुत्तरोपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरणांग, विपाकसूत्रांग व दृष्टिवादांग, इन बारह अंगों तथा सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक व निषिद्धिका, इन अंगबाह्य चौदह प्रकीर्णकों की श्रावण मास के कृष्ण पक्ष में युग के आदि में प्रतिपदा के पूर्व दिन में रचना की थी, अतएव इन्द्रभूति भट्टारक वर्धमान जिनके तीर्थ में ग्रंथकर्ता हुए। कहा भी है-

वर्ष के प्रथम मास व प्रथम पक्ष में श्रावण कृष्ण प्रतिपदा के पूर्व दिन में अभिजित् नक्षत्र में तीर्थ की उत्पत्ति हुई।।40।।

इस प्रकार उत्तरतंत्रकर्ता की प्ररूपणा की।

संपहि उत्तरोत्तरतंतकत्तारपरूवणं कस्सामो। तं जहा-कत्तियमासकिण्णपक्खचोद्दसरत्तीए पच्छिमभाए महदिमहावीरे णिव्वुदे संते केवलणाणसंताणहरो गोदमसामी जादो। बारहवरसाणि केवलविहारेण विहरिय गोदमसामिम्हि णिव्वुदे संते लोहज्जाइरिओ केवलणाणसंताणहरो जादो। बारहवासाणि केवलविहारेण विहरिय लोहज्जभडारए णिव्वुदे संते जंबूभडारओ केवलणाणसंताणहरो जादो। अट्ठत्तीसवस्साणि केवलविहारेण विहरिय जंबूभडारए परिणिव्वुदे संते केवलणाण-संताणस्स वोच्छेदो जादो भरहक्खेत्तम्मिं। एवं महावीरे णिव्वाणं गदे बासट्ठिवरसेहि केवलणाणदिवायरो भरहम्मि अत्थमिदि। 62। 3। णवरि तक्काले सयलसुदणाणसंताणहरो विण्णुआइरियो जादो। तदो अत्तुट्टसंताणरूवेण णंदिआइरिओ अवराइदो गोवद्धणो भद्दबाहु त्ति एदे सकलसुदधारया जादा। एदेसिं पंचण्हं पि सुदकेवलीणं कालसमासो वस्ससदं ।100।5। तदो भद्दबाहुभडारए सग्गं गदे संते भरहक्खेत्तम्मि अत्थमिओ सुदणाण-संपुण्णमियंको, भरहखेत्तमावूरियमण्णाणंधयारेण। णवरि एक्कारसण्णमंगाणं विज्जाणुपवादपेरंतदिट्ठिवादस्स य धारओ विसाहाइरिओ जादो। णवरि उवरिमचत्तारि वि पुव्वाणि वोच्छिण्णाणि तदेगदेसधारणादो। पुणो तं विगलसुदणाणं पोट्ठिल्ल-खत्तिय-जय-णाग-सिद्धत्थ-धिदिसेण-विजय-बुद्धिल्ल-गंगदेव-धम्मसेणाइरियपरंपराए तेयासीदिवरिससयाइमागंतूण वोच्छिण्णं। 183।11। तदो धम्मसेणभडारए सग्गं गदे णट्ठे दिट्ठिवादुज्जोए एक्कारसण्ण मंगाणं दिट्ठिवादेगदेसस्स य धारयो णक्खत्ताइरियो जादो। तदो तमेक्कारसंगं सुदणाणं जयपाल-पांडु-ध्रुवसेण-कंसो त्ति आइरियपरंपराए वीसुत्तरबेसदवासाइमागंतूण वोच्छिण्णं।220। 5। तदो कंसाइरिए सग्गं गदे वोच्छिण्णे एक्कारसंगुज्जोवे सुभद्दाइरियो आयारंगस्स सेसंग-पुव्वाणमेगदेसस्स य धारओ जादो। तदो तमायारंगं पि जसभद्द-जसबाहु-लोहाइरियपरंपराए अट्ठारहोत्तर-वरिससयमागंतूण वोच्छिण्णं।118।4। सव्वकाल-समासो तेयासीदीए अहियछस्सदमेत्तो।683। पुणो एत्थ सत्तमासाहियसत्त-हत्तरिवासेसु।77/7। वारिसेसु पंचमासाहिएसु वड्ढमाणजिणणि-व्वुददिणादो अइक्कंतेसु सगणरिंदरज्जुप्पत्ती जादो त्ति। एत्थ गाहा-

सत्तसहस्सा णवसद पंचाणउदी सपंचमासा य।
अइकंता वासाणं जइया तइया सगुप्पत्ती।।43।। (7995/5)

अब उत्तरोत्तर तंत्रतकर्ताओं की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है-कार्तिक मास में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि के पिछले भाग में अतिशय महान महावीर भगवान के मुक्त होने पर केवलज्ञान की सन्तान को धारण करने वाले गौतम स्वामी हुए। बारह वर्ष तक केवलविहार से विहार करके गौतम स्वामी के मुक्त हो जाने पर लोहार्य आचार्य केवलज्ञान-परम्परा के धारक हुए। बारह वर्ष केवलविहार से विहार करके लोहार्य भट्टारक के

मुक्त हो जाने पर जम्बू भट्टारक केवलज्ञान की परम्परा के धारक हुए। अड़तीस वर्ष केवलविहार से विहार करके जम्बू भट्टारक के मुक्त हो जाने पर भरत क्षेत्र में केवलज्ञान परम्परा का व्युच्छेद हो गया। इस प्रकार भगवान् महावीर के निर्वाण को प्राप्त हो जाने पर बासठ वर्षों से केवलज्ञानरूपी सूर्य भरत क्षेत्र में अस्त हुआ (62 वर्ष में 3 के.)। विशेष यह है कि उस काल में सकल श्रुतज्ञान की परम्परा को धारण करने वाले विष्णु आचार्य हुए। पश्चात् अविच्छिन्न सन्तान स्वरूप से नन्दि आचार्य, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु, ये सकल श्रुत के धारक हुए। इन पाँच श्रुतकेवलियों के काल का योग सौ वर्ष है (100 वर्ष में 5 श्रुत के.)। पश्चात् भद्रबाहु भट्टारक के स्वर्ग को प्राप्त होने पर भरतक्षेत्र में श्रुतज्ञानरूपी पूर्ण चन्द्र अस्तमित हो गया। अब भरतक्षेत्र अज्ञान अंधकार से परिपूर्ण हुआ। विशेष इतना है कि उस समय ग्यारह अंगों और विद्यानुवाद पर्यन्त दृष्टिवाद अंग के भी धारक विशाखाचार्य हुए। विशेषता यह है कि इसके आगे के चार पूर्व उनका एक देश धारण करने से व्युच्छिन्न हो गये। पुनः वह विकल श्रुतज्ञान प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल्ल, गंगदेव और धर्मसेन, इन आचार्यों की परम्परा से एक सौ तेरासी वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया (183 वर्ष में 11 एकादशांग-दशपूर्वधर)। पश्चात् धर्मसेन भट्टारक के स्वर्ग को प्राप्त होने पर दृष्टिवाद-प्रकाश के नष्ट हो जाने से ग्यारह अंगों और दृष्टिवाद के एकदेश के धारक नक्षत्राचार्य हुए। तदनन्तर वह एकादशांग श्रुतज्ञान जयपाल, पाण्डु, ध्रुवसेन और कंस, इन आचार्यों की परम्परा से दो सौ बीस वर्ष आकर व्युच्छिन्न हो गया (220 वर्ष में 5 एकादशांगधर)। तत्पश्चात् कंसाचार्य के स्वर्ग को प्राप्त होने पर ग्यारह अंगरूप प्रकाश के व्युच्छिन्न हो जाने पर सुभद्राचार्य आचारांग के और शेष अंगों एवं पूर्वों के एक देश के धारक हुए। तत्पश्चात् वह आचारांग भी यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य की परम्परा से एक सौ अठारह वर्ष आकार व्युच्छिन्न हो गया (118 वर्ष में 4 आचारांगधर)। इस सब काल का योग छह सौ तेरासी वर्ष होता है (62+100+183+220+118=683)। पुनः इसमें से सात मास अधिक सतत्तर वर्षों को होने के दिन से पाँच मास अधिक सात हजार नौ सौ पंचानवे वर्षों के बीतने पर शक नरेन्द्र के राज्य की उत्पत्ति हुर्ग। यहाँ गाथा-

जब सात हजार नौ सौ पंचानवे वर्ष और पाँच मास बीत गये तब शक नरेन्द्र की उत्पत्ति हुई।।43।। (7995 व. 5 मा.)

एदेसु तिसु एक्केण होदव्वं। ण तिण्णमुवदेसाण सच्चत्तं, अण्णोण्णविरोहादो। तदो जाणिय वत्तव्वं।

एत्तो उवरि पयदं परूवेमो-लोहाइरिये सग्गलोगं गदे आयार-दिवायरो अत्थमिओ। एवं वारससु दिणयरेसु भरहखेत्तम्मि अत्थमिएसु सेसाइरिया सव्वेसिमंग-पुव्वाणमेगदेसभूदपेज्जदोस-महाकम्मपयडिपाहुडादीणं धारया जादा। एवं पमाणीभूदमहरिसि-पणालेण आगंतूण महाकम्मपयडिपाहुडामियजलपवाहो धरसेणभडारयं संपत्तो। तेण वि गिरिणयरचंदगुहाए भूदबलि-पुप्फदंताणं महाकम्मपयडिपाहुडं सयलं समप्पिदं। तदो भूदबलिभडारएण सुदणईपवाहवोच्छेदभीएण भवियलोगाणुग्गहट्ठं महाकम्मपयडिपाहुडमुवसंहरिऊण छखंडाणि कयाणि। तदो तिकालगोयरासेसपयत्थविसयपच्चक्खाणंतकेवलणाणप्पभावादो पमाणीभूदआइरियपणालेणागदत्तादो दिट्ठिट्ठविरोहाभावादो पमाणमेसो गंथो। तम्हा मोक्खकंखिणा भवियलोएण अब्भसेयव्वो। ण एसो गंथो थोवो ति मोक्खकज्जजणणं पडि असमत्थो, अमियघडसयवाणफलस्स चुलुवामियवाणे वि उवलंभादो।

इन तीन उपदेशों में एक होना चाहिए। तीनों उपदेशों की सत्यता संभव नहीं है, क्योंकि इनमें परस्पर विरोध है। इसका कारण जानकर कहना चाहिए।

यहाँ से आगे प्रकृत की प्ररूपणा करते हैं-लोहाचार्य के स्वर्गलोक के प्राप्त होने पर आचारांगरूपी सूर्य अस्त हो गया। इस प्रकार भरतक्षेत्र में बारह सूर्यों के अस्तमित हो जाने पर शेष आचार्य सब अंग पूर्वों के एकदेशभूत 'पेज्जदोस' और 'महाकम्मपयडिपाहुड' आदिकों के धारक हुए। इस प्रकार प्रमाणणीभूत महर्षिरूप प्रणाली से आकर महाकम्मपयडिपाहुड- रूप अमृत-जल-प्रवाह धरसेन भट्टारक को प्राप्त हुआ। उन्होंने भी गिरिनगर की

चन्द्रगुफा में सम्पूर्ण महाकम्म्पयडिपाहुड भूतबलि और पुष्पदन्त को अर्पित किया। पश्चात् श्रुतरूपी नदीप्रवाह के व्युच्छेद से भयभीत हुए भूतबलि भट्टारक ने भव्य जनों के अनुग्रहार्थ महाकम्मपयडिपाहुड का उपसंहार कर छह खण्ड (षट्खण्डागम) किये। अतएव त्रिकालविषयक समस्त पदार्थों को विषय करने वाले प्रत्यक्ष अनन्त केवलज्ञान के प्रभाव से प्रमाणीभूत आचार्यरूप प्रणाली से आने के कारण प्रत्यक्ष व अनुमान से चूँकि विरोध से रहित है अतः यह ग्रंथ प्रमाण है। इस प्रकार मोक्षाभिलाषी भव्य जीवों को इसका अभ्यास करना चाहिए। चूँकि यह ग्रंथ स्तोक है अतः वह मोक्षरूप कार्य को उत्पन्न करने के लिए असमर्थ है, ऐसा विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि अमृत के सौ घड़ों के पीने का फल चुल्लु प्रमाण अमृत के पीने में भी पाया जाता है।

सार में सार *

''जिस दिन भगवान महावीर सिद्ध हुए उसी दिन गौतम गणधर केवलज्ञान को प्राप्त हुए। ये बारह वर्षों तक केवलीपद में रहकर सिद्धपद को प्राप्त हुए उसी दिन सुधर्मस्वामी केवली हुए, ये भी बारह वर्षों तक केवली रहकर मुक्त हुए तब जम्बूस्वामी केवली हुए, ये अड़तीस वर्षों तक केवली रहे अनंतर मुक्त हो गये। पुनः कोई अनुबद्ध केवली नहीं हुए। यह 12+12+38=62 वर्ष का काल अनुबद्ध केवलियों के धर्म प्रवर्तन का माना गया है।

केवलियों में अंतिम केवली 'श्रीधर' कुंडलगिरी से सिद्ध हुए हैं और चारण ऋषियों में अंतिम ऋषि सुपार्श्व नामक हुए हैं। प्रज्ञाश्रमणों में अंतिम वज्रयश नामक प्रज्ञाश्रमण मुनि और अवधिज्ञानियों में अंतिम श्री नामक ऋषि हुए हैं। मुकुटधरों में अंतिम चन्द्रगुप्त ने जिन दीक्षा धारण की। इससे पश्चात् मुकुटधारी राजाओं ने जैनेश्वरी दीक्षा नहीं ली है।

अनुबद्ध केवली के अनंतर नंदी, नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली हुए है। इनका काल 'सौ वर्ष' प्रमाण है। पुनः विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जय, नाग, सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिल, गंगदेव और सुधर्म ये ग्यारह आचार्य दशपूर्व के धारी हुए हैं। इन सबका काल 'एक सौ तिरासी' वर्ष है। अनंतर नक्षत्र, जयपाल, पांडु, ध्रुवसेन और कंस ये पाँच आचार्य ग्यारह अंग के धारी हुए हैं। इनका काल 'दो सौ बीस' वर्ष है। पुनः सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहार्य ये चार आचार्य आचारांग के धारक हुए हैं। ये चारों आचार्य ग्यारह अंग और चौदह पूर्वों के एकदेश के भी ज्ञाता थे। इनका काल 'एक सौ अठारह' वर्ष है। इस प्रकार गौतम स्वामी से लेकर आचारांग धारी आचार्यों तक का काल 62+100+183+220+118=683 छह सौ तिरासी वर्ष प्रमाण है। इसके अनंतर 20317 वर्षों तक धर्म प्रवर्तन के लिए कारणभूत ऐसा श्रुततीर्थ चलता रहेगा, पुनः काल दोष से व्युच्छेद को प्राप्त हो जायेगा। इतने मात्र समय में अर्थात् 683+20317=21000 इक्कीस हजार वर्षों के समय में चातुर्वर्ण्य संघ जन्म लेता रहेगा।

---

* दिगम्बर मुनि पुस्तक (लेखिका-पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी) से उद्धृत

Dwadshang Shrut can-not be written In the form of Scriptures

-Aryika Swarnmati (Sanghasth)

Jain *Vangmaya* (literature) is in the form of *Dwadshang* or twelve *Angas* or Organs (parts), which can not be written in the form of Scriptures due to their vast expansion and so in Digambar Jain Tradition, no *Dwadshang* is available today. Presently available four *Anuyogas* of Digambar Jain tradition are only a small portion of this *Dwadshang* as the water of the Ganges river is filled in a small vessel.

When Teerthankar Bhagwan is seated in *Samavsharan* after becoming Omniscient (*Kevalgyani*), His *Divyadhwani* is produced containing much more than all the *Dwadshang* in it. The Chief Disciple or *Gandhar Swami* understands and co-ordinates it in the form of *Dwadshang* in own mind and then passes it to others vocally.

One important fact is that the knowledge of *Dwadshang* i.e. 11 *Angas* & 14 *Purvas* can be assimilated or accepted by only Digambar *Munis*. *Aryikas* can have the knowledge of 11 *Angas* only and not of 14 *Purvas*, while *Shravakas* including *Ailak* & *Kshullakji* are not entitled to have the knowledge of *Dwadshang*.

Let's understand why *Dwadshang* can-not be written in the form of scriptures-

The day (*Kartik Krishna Amavasya*), on which Bhagwan Mahaveer Swami got liberated, in the evening of the same day, His Chief Disciple Gautam Gandhar got enlightenment (*Kevalgyan*). Kevali Bhagwan Gautam Swami lived for 12 years.

The day, on which Gautam Swami got liberated, on the same day, the second Gandhar of Bhagwan Mahaveer Swami-Shri Sudharmacharya attained Omniscience (*Kevalgyan*). He also lived for 12 years. On the day of His salvation, Jambuswami became the Omniscient, who lived for 38 years, thus after Bhagwan Mahaveer *Anubaddha* (serially linked without any gap of time) *Kevalis* remained for 12+12+38=62 years.

After it, 5 *Shrutkevalis* occurred in the time period of 100 years form Nandi Acharya to Bhadrabahu Acharya. Later of it, *Dwadshang Shrut* did-not remain in the form of 11 *Angas* and 14 *Purvas*. What remained is as follows—

11 Acharyas had the knowledge of 11 *Angas* and 10 *Purvas* in the time-period of 183 years.

After it, 5 Acharyas had the knowledge of 11 *Angas* (without the knowledge of *Purvas*) in the time-period of 220 years.

Later of it, 4 Acharyas had the knowledge of only one *Anga-Aacharang* in the period of 118 years i.e. the knowledge of 10 *Angas* & 14 *Purvas* became extinct.

Thus, the total time from Gautam Swami to *Aacharangdhari* Acharyas was 62+100+183+220+118=683 years.

After it, Shri Dharsenacharya had the knowledge of the some part of the 2nd *Purva*. He rendered this knowledge to Shri Pushpdant-Bhootbali Muniraj, who wrote down Shatkhandagam Granth based on the knowledge received from Shri Dharsenacharya.

Similarly, Shri Gundhar Acharya wrote Kashayaprabhrit Granth based on his knowledge of the some part of the 5th *Purva.*

Thus, a very minute part of the *Dwadshang* was firstly written in the forms of Kashayaprabhrit and Shatkhandagam Granthas. Prior to this, all the knowledge was passed to the disciples vocally only.

The intention here, is to clear the fact that in Digambar Jain tradition, 11 *Angas* & 14 *Purvas* can-not be written down in the form of Scriptures. Nobody should make the efforts for this, because the knowledge, present today, is only a very smaller part of the total knowledge and if we prepare the scriptures with the names of *Aacharang, Sutrakritang* etc., it will be the misleading practice only.

One important fact should also be understood that one medium *pad* (line) of *Dwadshang* contains 1634 crore 83 lakh and 7888 alphabets, while there are a total of 112 crore 83 lakh 58 thousand five such *padas* in *Dwadshang*.

Another fact is that if it was possible to write down the *Dwadshang*, why our ancient Acharyas as *Shrutkevali* Bhadrabahu Swami, Shri Pushpdant-Bhootbali Acharya, Shri Kund-Kund Swami & Shri Uma Swami Acharya etc. did-not do it, we have to sincerely think.

Thus, it is clear that it is out of the capacity of the present human-mind to write down such a vast *Dwadshang*, so we should rather make our life fruitful by the deep-studies of the presently available ancient scriptures.